Swami Vivekananda Advanced Journal for Research and Studies
Online Copy of Document Available on: www.svajrs.com
ISSN:2584-105X Pg. 193 - 196

सरस्वती-सदानीरा’ उपन्यास में निरूपित सामाजिक व्यवस्था

अनिल कुमार प्रजापति
शोधार्थी, हिंदी विभाग
दिग्विजयनाथ स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गोरखपुर
संबद्ध-दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर, उत्तर प्रदेश
akp2431@gmail.com

Accepted: 22/07/2025
Published: 27/07/2025 ***DOI: http://doi.org/10.5281/zenodo.18229094***

सारांश

व्यक्ति और समाज एक दूसरे के अस्तित्व हेतु उत्तरदायी कारक हैं। एक के अभाव में दूसरे का सृजन और समुचित निर्माण असंभव है। इसी कारण मनुष्य को एक सामाजिक प्राणी माना जाता है। मनुष्यों द्वारा निर्मित समाज की एक सुनिश्चित व्यवस्था होती है। प्रत्येक समाज अपने सामाजिक व्यवस्था के अनुसार नियम और सिद्धांतों के आलोक में समाज का नवसृजन और संचालन करता है। ‘सरस्वती-सदानीरा’ उपन्यास शत्रुघ्न प्रसाद द्वारा रचित एक ऐतिहासिक उपन्यास है। इसमें वैदिक कालीन सामाजिक व्यवस्था के विभिन्न प्रतिरूप ऐतिहासिक संदर्भ में ही वर्णित हैं। इन प्रतिरूपों में परिवार, शिक्षा संबंधी व्यवस्था, कृषि, ग्रामीण जनजीवन,सामाजिक तथा सांस्कृतिक मूल्य इत्यादि मुख्य रूप से विद्यमान है। वर्तमान भारतीय हिंदू समाज के विभिन्न व्यक्तिगत तथा समष्टिगत प्रश्न संबंधित समाधानों के साथ लेखक द्वारा पूरी तन्मयता से इस कथा साहित्य में उल्लेखित किये गये है।

उपन्यास में निरूपित वैदिक कालीन मानदंड, मूल्य तथा विभिन्न संस्थाओं की संरक्षित व्यवस्थाएं व्यक्तियों का मार्गदर्शन करती हैं। व्यक्ति और समाज में संतुलन बनाए रखती हैं।सामाजिक जीवन में सुसंगता एवं समानता बनाए रखती है। परिणामतः सामाजिक संबंधों में गतिशीलता विद्यमान रहती है। शाश्वत सत्य,समरसता और समानता से युक्त अपनी वैदिक कालीन सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन का साक्षात्कार कराता हुआ यह औपन्यासिक दस्तावेज पाठकों को सहज ही मुग्ध करता है। पौराणिक संदर्भों की भावभूमि पर प्रसाद जी ने तत्कालीन वैदिक धर्म, संस्कृति, शिक्षा, ग्रामीण जनजीवन, स्त्री विमर्श, गुरुकुल आदि की यथार्थ जांच पड़ताल की है जिसके विभिन्न संबंधित प्रसंग ग्रहणीय हैं। इस उपन्यास के बारे में लेखक ने भूमिका में लिखा है “सरस्वती-सदानीरा वैदिक युग के उपलब्ध इतिहास,विकासशील संस्कृति तथा समन्वय द्वारा गठित हो रहे समाज के स्वरूप का इतिहास है। सरस्वती तट से पूर्व में स्थित सदानीरा तट तक की सांस्कृतिक यात्रा का उपन्यास है”।[1]

मुख्य शब्द: *विवाह, जनजीवन, शिक्षा, मद्दपान, विभाजन,समन्वय, एकता, सदाचरण।*

शोध विस्तार-

परिवार - मनुष्य का जन्म परिवार में होता है। परिवार में ही उसके व्यवहार को एक निश्चित आयाम प्राप्त होता है। परिवार के बाद वह मित्र मंडली तथा समुदाय से गुजरते हुए समाज से परिचित होता है। जहां वह अपने जीवन शैली से समाज को प्रभावित करता है तथा समाज द्वारा स्वयं भी परिष्कृत होकर अनुरूप व्यवहार करता है। परिवार के सृजन का मुख्य आधार विवाह नामक संस्था होती है। संसार के सभी देशों में किसी न किसी रूप में विवाह की परंपरा अवश्य विद्यमान है। विवाह द्वारा स्त्री और पुरुष यौन इच्छाओं की पूर्ति करते हैं। विवाह को सभी सामाजिक सभ्यताओं में मान्यता दी गई है "परिवार की स्थापना के लिए स्त्री और पुरुष में आवश्यक संबंध बनाने और स्थिर रखने के लिए कोई न कोई व्यवस्था प्रत्येक समाज में पाई जाती है जिसे विवाह कहते हैं।"[2] उपन्यास में प्रायः एकल परिवार की अवधारणा अधिक है जो दांपत्य संबंध द्वारा अधिक जुड़े हुए हैं। इसमें याज्ञवल्क्य-कात्यायनी,ऋषि अत्री की पुत्री अपाला-कृशाश्व, संभूति का पुत्र आशित-विभा, सामश्रवा-मणिप्रभा, बुझावन- पाटली आदि दांपत्य संबंध द्वारा एकल परिवार का ही निरूपण करते हैं। विवाह द्वारा दांपत्य की स्वीकार्यता समाज के आदर्श और मूल्यों की परिधि को बनाए रखने हेतु ही थी। उपन्यास में पिता को आकाश तथा माता को भूमि के समान बताते हुए स्त्री और पुरुष के वैवाहिक प्रयोजन की सिद्धि संतान उत्पत्ति तथा उसके पालन पोषण से जुड़ी हुयी एक नैतिक अनिवार्यता ही है। निश्चय ही सृष्टि संचालन तथा सामाजिक व्यवस्था के अनुरूप ही विवाह को समर्थन प्राप्त है। स्त्री (प्रकृति) और पुरुष के मिलन का आधार सामाजिक रूप से स्वीकृत विवाह है,अन्य तरीकों से हुए कामजन्य सहभाव सामाजिक दृष्टि से हीन समझे जाते हैं।

कृषक जीवन - उपन्यास में ऋषि वैशंपायन के आश्रम के उत्तर दिशा में स्थित कृषि क्षेत्र का अंकन है। वर्तमान भारत में जिस प्रकार कृषक जीवन विविधताओं से भरा हुआ है वह निश्चय ही वैदिक कालीन कृषक जीवन की परंपरा की देन कहा जा सकता है। खेतों में जौ, मूंग, मसूर, गेहूं, आदि फसलों को उगाना, कुएँ अथवा छोटी नहरों द्वारा खेतों की परंपरागत तरीके से सिंचाई करना, कार्य करते हुए अनायास किसानों द्वारा विभिन्न प्रकार के गीतों का गायन, खेतों में क्यारियां बनाना, आकाश में पक्षियों का उड़ना व खेत के कीड़े मकोड़ों का भक्षण करना, घरों का मिट्टी, लकड़ी,पत्थर तथा ईंटों से निर्मित होना, सभी घरों में प्रातः कालीन हवन किया जाना, जौ, गेहूं आदि की बालियों पर टिड्डीयों का आक्रमण, गायों का वन में चरने हेतु जाना, वर्षा होना,कभी-कभी मूसलाधार बारिश के द्वारा हिमखंडो से फसलों का नष्ट होना आदि कृषक जीवन के संघर्ष को प्रदर्शित करते हैं। वर्तमान में देश कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था वाला देश है। वैदिक काल में कृषि आधारित आर्थिक गतिविधियों का बोलबाला था। कृषि और गौ सेवा विशेष रूप से जीवन के आधार थे। ऋषि,पुरोहित,शस्त्रधारी, व्यापारी सभी सत्यनिष्ठ भाव से अपने-अपने कर्म द्वारा देश की सेवा करते थे। वैश्यों को व्यापार कर्म से विशेष रुप से जोड़ा गया था। "हम धरती की सेवा से अन्न, फल, शाक, स्वर्ण, ताम्र, लौह- सब पा लेते हैं। औषधियां पाते हैं। काष्ठ, बांस और वेत्र को लेकर अपने लिए उपयोगी बनाते हैं।"[3]

शिक्षा व्यवस्था - शिक्षा रूपी ज्योति के अविर्भाव की संकल्पना वैदिक काल से ही रही है। गुरुकुल प्रणाली की शिक्षा वैदिक काल की देन है। याज्ञवल्क्य, कौषीतकि, वैशम्पायन,सामश्रवा इत्यादि इसी काल के पुरुष आचार्य हैं। कात्यायनी, गार्गी, मैत्रेयी, आपाला,घोषा, मणिप्रभा इत्यादि विदुषी महिलाएं भी इसी समय की हैं। इस समय शिक्षा गुरुकुलों में पुरुष आचार्यों के सानिध्य में औपचारिक तथा अनौपचारिक रुप से प्रदान किया जाता था। कतिपय स्त्रियां अपने पिता के सानिध्य में ही रहकर शिक्षा प्राप्त करती थी। ब्राह्मणों को ज्योतिष, धर्मशास्त्र इत्यादि संबंधित शिक्षाएं तथा क्षत्रिय राजकुमारों को अस्त्र-शस्त्र संचालन तथा रक्षा हेतु योग्य बनाया जाता था। तत्कालीन समय में भी विषय विशेषज्ञ आचार्य की अवधारणा भी विद्यमान थी। वैशम्पायन याज्ञवल्क्य से कहते हैं "मैंने आश्रम के आचार्यों से विचार विमर्श किया है। व्याकरण के आचार्य वासु, कल्प के अयाचित, निरुक्त के प्रगाथ, गणित के सांख्यमेधा और वनस्पति के सोमक से बातचीत की है....... अब तुम आचार्य के रूप में आश्रम में रहोगे।"[4] इस समय शाकाहारी भोजन की स्वच्छता और पौष्टिकता पर शोध कार्य द्वारा यह प्रमाणित किया गया कि वही भोजन उचित है जो शरीर, हृदय और मस्तिष्क के लिए पोषक हो। सोमदेव और आचार्य सोमक द्वारा मानव कल्याण हेतु प्रयोग और अनुसंधान करना, आचार्य सांख्यमेधा द्वारा गणितीय संक्रियाओं के माध्यम से आकाश के ग्रहों, उपग्रहों के प्रभाव का अध्ययन करना इत्यादि वैदिक शिक्षा के विशेषताओं का प्रतिपादन करते हैं।

मद्यपान और जुआ - मदिरा सेवन और जुआ खेलना व्यक्तिगत और सामाजिक दृष्टि से उचित नहीं है। यद्यपि यह वैदिक काल से लेकर वर्तमान समय में भी समाज के साथ जुड़ा हुआ है। इसके दुष्प्रभाव से समाज और मानव का निरंतर अहित तो होता ही है साथ ही शराबी का परिवार भी इसके दंश का शिकार होता रहता है। वैशम्पायन और आसित के संवाद में मदिरा सेवन और जुआ के स्वरूप और समाधान का अंकन निम्न रूप में दृष्टिगत होता है।

"अनेक लोग किसी न किसी रूप में मदिरा लेते हैं। मैं भी थोड़ा पी लेता हूं, अपने सुख के लिए! धन पाने के लिए जुआ खेलता हूं।" आसित ने कहा।

वैशम्पायन ने पुनः समझाया, "आसित,जुआरी की पत्नी सदा दुःखी रहती है। उसका पुत्र मारा-मारा फिरता है और

जुआरी दूसरों के आश्रय में रहता है। ऋणी बना रहता है।"[5] निश्चय ही शराब का सेवन और जुआ खेलने की प्रवृत्ति आज भी समाज में बरकरार है। मद्द के व्यापार द्वारा देश का धन विदेश में जाना तथा हास-विलास की आड़ में मानवीय मर्यादा का उल्लंघन करना देश और समाज के हित में नहीं है। मदिरा पान से अचेत होने के स्थान पर मदिरा और द्दूत क्रीड़ा के परित्याग द्वारा सचेतावस्था में अपनी भूमि, देश और प्रकृति की सेवा का समर्थन उपन्यास में वर्णित है।

वर्ण व्यवस्था - वैदिक काल में किसी प्रकार का सामाजिक विभाजन प्रारंभ में नहीं था। सभी व्यक्ति समान समझे जाते थे। उपन्यास में भासित नामक पात्र समाज की संरचना प्रक्रिया को स्पष्ट करते हुए कहता है "आरंभ में तो सभी कृषि कार्य करते थे। सभी एक समान थे। सभी विश्व थे। जब आचार्य और पुरोहित कर्म की आवश्यकता हुई तो चिंतक साधक ऋषि ने कुछ मेधावी जनों का विश् से चयन किया। जब वन्य पशुओं, दस्युयों और विरोधी जनजातियों से सुरक्षा की समस्या आई तो विश् जन सामान्य से बलशाली जनों का चयन कर लिया। अब ये ही क्रमशः ब्राह्मण और क्षत्रिय कहे जा रहे हैं।"[6] कहने का तात्पर्य यह है की दार्शनिक और आध्यात्मिक तथ्यों की जानकारी हेतु श्रेष्ठ वर्ण के रूप में ब्राह्मण तथा शारीरिक दक्षता और शक्ति से पूर्ण व्यक्ति का क्षत्रिय में चयन कर समाज में उसकी स्थिति स्वीकार होती थी। यह निर्धारण योग्यता और क्षमता के आधार पर होता था। पर्वतक नामक पात्र कहता है "युगों से ऋषि मंडल विश् सामान्य जन से योग्यता के आधार पर चयन और वरण करता रहा है। इसी चयन वरण के द्वारा वर्ण व्यवस्था होती रही है। कोई ब्राह्मण है, कोई क्षत्रिय है और कोई वैश्य।"[7] इस प्रकार वर्ण व्यवस्था का विभाजन कर्म के आधार पर प्रारंभ में किया गया, जिसमें एक ही परिवार का व्यक्ति अपनी योग्यता, क्षमता और कर्मशीलता द्वारा ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्य वर्ग का अधिकारी हो जाता था। मित्र ऋषि नामक पात्र जो कीरात समूह का सदस्य था, वह अपनी योग्यता, मेधा और साधना के बल पर ऋषित्व को प्राप्त कर लेता है। इसी प्रकार भासित और पर्वतक दो भाई थे। इनमें "भासित ने अपनी मेधा से अध्ययन में सुरुचि दिखाई।वह पढ़कर पुरोहित बन गया। उसे ब्राह्मण की प्रतिष्ठा मिल रही है।"[8] इसके ठीक दूसरी तरफ पर्वतक क्रमशः सैनिक और सैनिक प्रधान बनता है। वह क्षत्रिय के रूप में जाना जाता है। पर्वतक का पुत्र आसित कृषि कार्य में संलग्न रहते हुए कृषि से होने वाले लाभों और हनियों की चिंता करता है। इस प्रकार कर्म और श्रम योगदान के माध्यम से समाज व्यवस्था की स्थापना पर जोर देते हुए भासित कहता है, "प्रत्येक परिश्रम से अपने कर्म में निष्णात हो। कृषक और शिल्पी अपने श्रम से अन्न और अन्य उपयोगी वस्तुओं का उत्पादन करें। मेधावी जन आचार्य और पुरोहित का कार्य निष्ठा से करें। बलशाली जन इंद्र के समान योद्धा बने। इसमें समाज की अच्छी व्यवस्था होगी। वैदिक कार्य आगे बढ़ेंगे।"[9] समाज में अक्सर यह देखा जाता है कि लंबे समय तक समाज में निश्चित पद प्राप्त कर लेने के बाद व्यक्ति अपने स्वजन से ही ही भेदभाव करने लगते हैं। इस प्रकार उनका अहंकार भाव जागृत होता है। क्षत्रिय कर्म करते हुए पर्वतक शस्त्रधारी बनकर गांव और नगर में अकड़ दिखाता है तथा उसका भाई भासित पुरोहित बनकर सभी से नमन की आकांक्षा करता है। अपने ही कुल के सदस्य आसित को दोनों भाई उसके द्वारा कृषि कार्य करने के कारण छोटा समझने लगते हैं। यह समाज की सच्चाई भी है।आज भी समाज में ऐसे विभिन्न उदाहरण मिल जाएंगे जो अपने स्वजनों को छोटा और नीच समझने में कोई कमी ही नहीं करते हैं।

कर्म आधारित वर्ण व्यवस्था के विपरीत जाति आधारित समाजिक विभाजन के गुण तथा हानि अत्यंत प्रासंगिक ही जान पड़ते है। "कुरु पांचाल के ऋषियों का कहना है कि जन्मना व्यवस्था होने पर सभी अपना कर्म अधिक योग्यता तथा निपुण ता से कर सकेंगे। परिवार और परंपरा से योग्यता बढ़ती जाएगी।...... इससे समाज आगे बढ़ सकेगा।"[10] इसके विपरीत जाति आधारित सामाजिक विषमता का वर्णन करते हुए याज्ञवल्क्य कहते हैं "मैं जन्मना से असहमत मत हूं, क्योंकि जन्मना व्यवस्था से सामाजिक विषमता उत्पन्न हो सकती है। हम जन्म से ही किसी को बड़ा और किसी को छोटा क्यों माने? कोई जन्म से श्रेष्ठ कहलाए, कोई जन्म से ही हीन माना जाए, यह तो अस्वस्थ समाज का लक्षण है। सारे समाज से मेधा शक्ति और योग्यता के आधार पर चयन होता रहे। सभी और समाज एकात्म माना जाए।"[11] इस प्रकार सामाजिक समरसता ही स्वस्थ समाज की व्यवस्था का आधार हो सकती है। इस कर्म और जाति विभाजन के द्वारा तत्कालीन भारतीय समाज भी चार भागों में बांटा था। " इसमें कुछ गुणी पुजारी हैं। कुछ योद्धा है। कुछ धनी है। शेष श्रमिक है।"[12] इसी आधार पर भविष्य में ब्राह्मण, क्षत्रिय,वैश्य और शूद्र का विभाजन हुआ जान पड़ता है। कालांतर में इन चारों वर्णों के अंतर्गत विभिन्न जातियों और उपजातियां की लंबी श्रृंखला बन गई जो समाज विभाजन के आधार बने। इसी व्यवस्था की ही देन है कि आज देश और समाज में जाति विशेष के आधार पर विभिन्न सामाजिक और राजनीतिक पार्टियों का अस्तित्व बना हुआ है,जो देश की अखंडता और एकता को उचित महत्व ने देकर स्वजाती के हित साधना में निरंतर प्रयत्नशील है। ऋषि याज्ञवल्क्य उपन्यास के अंत में कर्म और जाति आधारित सामाजिक विघटन से उत्पन्न समस्या का समाधान करते हुए कहते हैं, "जन्मना और कर्मणा में एक समन्वय लाया जा सकता है। विषमता को दूर करने के लिए एक परम चेतना, एक सदाशिव और एक समाज पुरुष का भाव - संस्कार लाना होगा। वर्णगत अहं और दंभ को पाप माना जाएगा।"[13]

सामाजिक समन्वशीलता - प्रसाद जी की यह रचना वैदिक और व्रात्यों के समन्वय पर आधारित है। वैदिक आर्य

और कीकट (मगध) के व्रात्य विभिन्न संदर्भों में एक दूसरे के विरोध में वर्णित हैं। आर्य व्रात्यों से अपने को उच्च समझते हैं। यही भावना दोनों में टकराव का मुख्य आधार है।व्रात्य अपने विरोधियों (आर्यों) को अवसर पाकर पत्थर मारते हैं, बाण मारते हैं तथा जादू - टोने व झाड़ - फूंक द्वारा भी प्रभावित करने का प्रयास करते हैं। मदिरा सेवन द्वारा उन्मत्त होते हैं। अवसरानुकूल ही व्रात्यों द्वारा बुझावन और ईश्वर बंदी बना लिए जाते हैं, साथ ही कई गायें भी पकड़ ली जाती हैं। इस प्रकार वैदिक जन आर्यों के प्रति अपने मन में व्रात्य शत्रुता का भाव पालते रहते हैं। "ये व्रात्य यज्ञ के नाम से भड़क उठते हैं। वैदिक संस्कारों की चर्चा होने पर धान्यरस पीकर हंसने लगते हैं। पर स्वर्ण को देख आंखें फाड़ लेते हैं। ललक उठते हैं।....... इन्हें गोधन और स्वर्ण की बड़ी लालसा है। जब तब वे गोधन और स्वर्ण के लिए झपटते हैं।"[14] आर्य और व्रात्य इसी भारत भूमि के जन समुदाय हैं। अतः दोनों में समन्वय स्थापित करने हेतु ऋषि मित्र के साथ यज्ञवल्क्य व्रात्यों की भूमि पर जाते हैं। वहां पहुंचते ही प्रधान गृहपति खरपत नामक पात्र द्वारा मिट्टी के फेंके गये ढेले से घायल हो जाते हैं। पुनः कौषीतकि मुनि के साथ मिलकर यह स्पष्ट करते हैं कि उनका व्रात्यों के प्रति बैर-भाव नहीं है और न ही वे उन्हें हीन दृष्टि से देखते हैं। सरस्वती से सदानीरा (गंडक) तक की भूमि एक देश है तथा सभी जन समूह को एक साथ रहने की वकालत करते हैं। व्रात्य खरपत की पुत्री पाटली और आर्य बुझावन के विवाह द्वारा आर्यों और व्रात्यों में ऐक्य भाव स्थापित होता है। वैदिक आर्य अग्नि द्वारा देवताओं को यज्ञ आहुति देकर प्रसन्न करते हैं तो व्रात्य रूद्र शिव को अपना आराध्य मानकर फल फूल अर्पित कर प्रसन्न करते हैं। याज्ञवल्क्य के शब्दों में "हम हर बिंदु पर मिलन,संगम और समन्वय चाहते हैं, जिससे इस विशाल देश में एक वृहद समाज और सुंदर संस्कृति की रचना आगे बढ़ सके।"[15] इस प्रकार उपन्यास में विभिन्न जन समुदायों द्वारा अपने-अपने क्षेत्र में अपनी-अपनी सामाजिक व्यवस्था के अनुरूप रहन-सहन की स्वतंत्रता पर प्रकाश डालते हुए अनेकता में एकता की प्रतिस्थापन की गई है। है। इसके साथ ही उपन्यास में इसका भी संकेत है कि समस्त देशवासी सामाजिक विषमता को नजरअंदाज कर देश की उन्नति हेतु कृषि,शिल्प,वाणिज्य,ज्ञान-विज्ञान आदि क्षेत्र में निरंतर सहयोगात्मक ढंग से कार्य करें जिस देश निरंतर प्रगतिशील रहे।

निष्कर्ष - इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि शत्रुघ्न प्रसाद जी ने 'सरस्वती-सदानीरा' उपन्यास में जिस वैदिक युगीन सामाजिक व्यवस्था का दिग्दर्शन कराया है,वह निश्चय ही सनातनी सामाजिक व्यवस्था है। आधुनिक सामाजिक और सांस्कृतिक विविधता से उत्पन्न विसंगतियों से निजात पाने हेतु वैदिक कालीन सामाजिक व्यवस्था का अनुकरण करते हुए आदर्श समाज का सृजन तथा संचालन किया जाना प्रासंगिक है। उचित कर्म विधान, अहिंसा, काम, क्रोध, लोभ, अहंकार आदि दुर्गुणों से मुक्त सदाचरण द्वारा स्वस्थ मनुष्य ही सच्चे मानवीयता पूर्ण समाज की प्रतिस्थापना कर सकता है, जिससे हमारे समाज अथवा देश का सुनहरा भविष्य गौरवमयी वैदिक कालीन सामाजिक पृष्ठभूमि में निर्मित किया जा सकता है।

संदर्भ सूची

1.सरस्वती-सदानीरा-शत्रुघ्न प्रसाद, नेशनल पब्लिशिंग हाउस,नई दिल्ली, संस्करण 2015, पृष्ठ भूमिका से

2.हिंदी उपन्यास और समाज, ओमप्रकाश शर्मा,अरावली बुक्स इंटरनेशनल (प्रा.) लिमिटेड, नई दिल्ली, संस्करण 2000,पृष्ठ 98

3.सरस्वती-सदानीरा-शत्रुघ्न प्रसाद, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, संस्करण 2015, पृष्ठ 19

4. वही,पृष्ठ 21

5. वही, पृष्ठ 22-23

6. वही, पृष्ठ 84

7.वही,पृष्ठ 100

8.वही, पृष्ठ 83

9.वही, पृष्ठ 85

10.वही, पृष्ठ 214

11.वही, पृष्ठ 278

12.वही,पृष्ठ 214

13.वही, पृष्ठ 279

14.वही, पृष्ठ 222

15. वही, पृष्ठ 274

Disclaimer/Publisher's Note: The views, findings, conclusions, and opinions expressed in articles published in this journal are exclusively those of the individual author(s) and contributor(s). The publisher and/or editorial team neither endorse nor necessarily share these viewpoints. The publisher and/or editors assume no responsibility or liability for any damage, harm, loss, or injury, whether personal or otherwise, that might occur from the use, interpretation, or reliance upon the information, methods, instructions, or products discussed in the journal's content.

****